NOTES

सर्वदर्शन संग्रह (बौद्ध दर्शन)

इकाई की रूपरेखा

यूनिट-चतुर्थ

NOTES

भूमिका :

बौद्ध धर्म के प्रवत्रक महात्मा बुद्ध थे। आपका जन्म बैशाखी पूर्णिमा को ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में नेपाल की तराई में स्थित कपिल वस्तु नामक नगर में हुआ था। आपके पिता का नाम भुद्धोदन तथा माता का नाम मायादेवी था। जन्म के समय इनका नाम सिद्धार्थ रखा गया तथा बाद में इसका नाम पारिवारिक नाम गौतम पड़ा राजमहल में समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं की उपलब्धता के बावजूद, सुदर्शना पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल के साथ सुख पूर्वक राजगृह में रहते हये भी आपका मन सांसारिकता में नही लगता था।

संसार में व्याप्त दुःखो तथा उनसे आत्यन्तिक मुक्ति पाने के उपाय की खोज में आपने घर-परिवार छोड़कर सन्यास ग्रहण कर लिया। 12 वर्षो की अनवरत घ्यानस्थ साधना के उपरान्त आपको बोधि (पूर्णज्ञान) प्राप्त हुआ। ये बोधि (पूर्णज्ञान) प्राप्त कर बुद्ध कहलाये। इसी बोधि के आधार पर बौद्ध धर्म तथा बौद्ध दर्शन कायम हुये। महात्मा बुद्ध के सम्पूर्ण विचार एवं उपदेश चार आर्यसत्यों में निहित है। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त बौद्ध दर्शन चार दार्शनिक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में हम आपकों बौद्ध दर्शन तथा उसकी दार्शनिक मान्यताओं के बारे में जानकारी दे रहे है। इस इकाई को पढ़कर आप महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों-दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निरोध है और दुःख निरोध का मार्ग है की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही इसी इकाई में महात्मा बुद्ध के उपदेशों मे निहित दार्शनिक विचारों का भी अनुशीलन किया जायेगा। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन ज्ञान और सत्ता के प्रश्न को लेकर चार दार्शनिक सम्प्रदायों मे विभक्त हो गया। शून्यवाद, विज्ञानवाद, वैभाषित, सौतात्क्तिक मतों की अपनी-अपनी दर्शनिक मान्यतायें

है। प्रस्तुत इकाई का उद्‌देश्य पाठकों को सीधी सरल भाषा में उक्त समस्त विषयों के बारे में जानकारी प्रदान करना है।

NOTES

4.4.1 विवाद पराङ्मुखता-बुद्ध के उपदेश

भगवान बुद्ध के उपदेशों का सांराश उनके चार आर्यसत्यों मे निहित है। बोधि (ज्ञान) प्राप्ति के उपरान्त महात्मा बुद्ध ने इन चार आर्यसत्यों का सर्वप्रथम उपदेश वाराणसी (सारनाथ) में दिया। इन घटना को बौद्ध धर्म में 'धर्मचक्र प्रवत्रन' की संज्ञा दी गयी है। इन आर्यसत्यों का महत्व बतलाते हुय स्वयं बुद्ध महापरिनिर्वाण सन्त में कहते है-भिक्षुओं! इन चार आर्यसत्यों को भलीभाँति न जानने के कारण ही मेरा और तुम्हारा संसार मे जन्म-मरण और दौड़ना दीर्धकाल से जारी रहा। इस आवागमन के चक्र मे हम सभी दुःख भोगते रहे। विभिन्न योनियों मे भटकते रहें अब इनका ज्ञान हो गया, दुःख का समूल विनाश हो गया अब आवागमन नही होना है।

कुछ त्रिपिटक ग्रन्थों से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध के समय तथा उसके पूर्व से ही धर्म और दर्शन जगत में अतीन्द्रिय विषयों-आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष, स्वर्ग, परलोक आदि के सम्बन्ध में घोर वाद-विवाद तथा तर्क वितर्क होते थे। धर्माचार्य इन विषयों के लेकर भोली-भाली जनता का शोषण करते थे वहीं दार्शनिक बौद्धिक विलास रूप मे अतीन्द्रिय विषयों की विवेचना किया करते थे। महात्मा बुद्ध का उद्‌देश्य दुःख निवृत्ति के उपायों की मींमांसा करनी थी न कि अप्रत्यक्ष दार्शनिक तत्वों की मीमांसा। सो उन्होने घोषणा की-जिन विषयों के समाधान के लिये पर्याप्त प्रमाण न हो उनके समाधान की चेष्टा व्यर्थ है। उन्हेंने अप्रत्यक्ष, अतीन्द्रिय विषयों के बारे में तर्क का इसलिये भी परित्याग किया कि इससे मोक्ष प्राप्ति मे कोई मदद नही मिलती है। दुःखो से पीड़ित रहते हुये आत्मा तथा जगत के मूलतत्वों के बारे मे अनुसंधान करना उसी तरह से मूर्खता है जैसे शिकारी द्वारा बाण से आहत हो जाने पर शरीर से तत्काल बाण निकालने के बजाय कोई व्यक्ति इस तर्क-वितर्क में समय गँवाये कि बाण चलाने वाला शिकारी किस जाति का था किस धर्म का था अथवा उसका रूप-रंग

कद-काठी कैसी थी? मुख्य समस्या है दुःख और उसकी निवृत्ति का उपाय का अनुसंधान। महात्मा बुद्ध ने निम्न दस प्रश्नों के समाधान असम्भव तथा व्यवहारिक दृष्टि से व्यर्थ समझा है। 1. वे प्रश्न इस प्रकार है-क्या यह लोक शाश्वत है? 2. क्या यह अशाश्वत है? 3. क्या यह सांत है? 4. क्या यह अनंत है? 5. आत्मा तथा शरीर क्या एक है? 6. क्या आत्मा शरीर से भिन्न है? 7. क्या मृत्यु के बाद तथागत का पुनर्जन्म होता? 8. क्या मृत्यु के बाद तथागत का पुनर्जन्म नही होता है? 9. क्या पुनर्जन्म होता भी है, नहीं भी होता है? 10. क्या उसका पुनर्जन्म होना और न होना दोनों बातें असत्य है।

NOTES

बौद्ध धर्म के पालि साहित्य में इन प्रश्नों के 'अण्याकतानि' कहते है। इन प्रश्नों का विवेचन व्यावहारिक दृष्टि से निष्फल है तथा उनका असंग्धि ज्ञान मिल भी नही सकता। बुद्ध के उपदेशो का सार उनके चार आर्यसत्यों मे निहित है। जो निम्नवत है।

1. दुःख है 2. दुःख का कारण है

3. दुःख का निरोध है 4. दुःख निरोध -का मार्ग है।

4.4.2 प्रथम आर्यसत्य-दुःख है

महात्मा बुद्ध के अनुसार यह समूचा संसार दुःख है, दुःख का घर है और दुःख का साधन है (यही से दुःख मिलता है) दुःख का उपदेश देते हुये तथागत ने स्वयं प्रथम आर्यसत्व की व्याख्या करते हुये कहा है भिक्षुओं! चिरकाल तक माता के मरने का दुःख सहा है, पिता के मरने का दुःख सहा है, पुत्र के मरने का दुःख सहा है। पुत्री के मरने का दुःख सहा है। कुटुम्बों के मरने का दुःख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुःख सहा है।

इन सभी प्रकार के दुःखों को सहने वालों ने संसार में बार-बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग तथा अप्रिय के संयोग के कारण रोये-पीटे है आँसू बहाये है। वस्तुतः संसार दुःखात्मक है। कुछ नही तो जरायरण और जन्म का दुःख तो सबको भोगना ही पड़ता है। संसारिक सुखों के साथ हमेशा यह चिंता लगी रहती है कि कही वे नष्ट न हो जाय।

द्वितीय आर्यसत्य :

NOTES

अब यहाँ पर प्रश्न यह पैदा होता है कि संसार में हमें जो नाना प्रकार के दुःख मिल रहे है उनका मूल कारण क्या है? महात्मा बुद्ध का मन्तव्य है कि बिना कारण के किसी भी कार्य या घटना का प्रादुर्भाव नही होता है। दुःखों के पीछे बारह कारणों की एक लम्बी श्रृंखला है जिसे भव चक्र, संसार चक्र या द्वादश निदान कहा जाता है। ये कारण निम्नवत है।

1 जरामरण : जीवन के दुःखो का सांकेतिक नाम जरामरण है। जरा का अर्थ है बुढ़ापा और मरण का अर्थ मृत्यु या विनाश है। जो जन्म लेता है वह बुढ़ापा को प्राप्त होता है तथा एक दिन मरता है। जन्म लेने के बाद उसके अंगो-प्रत्यंगो का निर्माण होता है तथा निर्माण के बाद क्षय प्रारभ हो जाता है यही क्षय या विनाश जरा है।

जाति : जन्म ग्रहण करना ही जाति है। यदि व्यक्ति का जन्म ही न हो तो जन्म के उपरान्त मिलने वाले कष्टों की प्राप्ति का कोई प्रश्न ही नही। अतः जाति या जन्मग्रहण ही दुःखो का मूल कारण है।

भव : जीव जन्म ही क्यों ग्रहण करता है उत्तर है जन्म लेने की प्रवृत्ति के कारण। सांसारिक विषय भोगों में बड़ा सुख मिलता है इसलिये जीव बार-बार जन्म लेकर अनेक प्रकार से विषयों का भोग करना चाहता है। जिसके लिये वह जन्म ग्रहण करना चाहता है। अतः जन्म ग्रहण करने की प्रवृत्ति ही जन्म का मूल कारण है।

उपादान : अब यदि कहा जाय कि जन्म ग्रहण करने की प्रवृत्ति जीव मे क्यों पायी जाती है तो उत्तर है सांसारिक विषयों के प्रति जो हमारा उपादान अर्थात् उनसे लिपटे रहने की अभिलाषा है वही हमारी जन्म प्रवृत्ति का कारण है।

तृष्णा : यह विषयों के प्रति आसक्ति है। हमारी इन्द्रियों का जब विषयों से सम्पर्क होता है तो हम सुखकर विषयों का ग्रहण करना चाहते है तथा दुःखकर विषयों का त्याग करना चाहते हैं। सुखकर विषयों के प्रति जो हमारा आकर्षण होता है वही तृष्णा है। साधारणतः तृष्णा का अर्थ व्यास होता है। हम विषय

सुख भोगने के लिये सर्वदा लालायित तथा प्यासे रहते हैं। यही व्यास आसक्ति है बौद्ध दर्शन में इसे ही जन्म और मरण का यथार्थ कारण माना गया है।

NOTES

वेदना : इन्द्रियों और विषय के सम्पर्क से हमें जो अनुभूति होती है वही वेदना है। इन्द्रियों के द्वारा जो हमें वेदना (अनुभूति) होती है उसी से हमारी तृष्णा जगी रहती है।

स्पर्श : यह इन्द्रिय और विषय के सम्पर्क या संयोग की अवस्था है। हमे छः प्रकार की इन्द्रियों से छः प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है।

षडायतन : स्पर्श के लिये पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन आवश्यक है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के समूह को षडायतन है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है-आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा इनसे हमें रूप, शब्द, गन्ध, स्वाद और स्पर्श का ज्ञान प्राप्त होता है। मन से हमे सुख, दुःख आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। जब व्यक्ति माता के उदर से बाहर आता है तो इसे छः प्रकार की इन्द्रियों नाना विध विषयों का ज्ञान प्राप्त होने लगता है।

नामरूप : गर्भस्थ भ्रूण के शरीर और मन को नामरूप कहते हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार गर्भ क्षण से लेकर शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं की रचना का समय ही नामरूप कहलाता है।

विज्ञान : व्यक्ति पूर्वजन्म के कर्मानुसार माता के गर्भ में आकर सर्वप्रथम चैतन्य की अवस्था को प्राप्त होता है। इस चैतन्य की अवस्था में ही उसे इन्द्रियों तथा विषय भोगों की जानकारी प्राप्त होने लगती है। गर्भ मे आते ही मानव में भोग के विषयों की जानकारी प्रांरभ हो जाता है।

संस्कार : संस्कार पूर्वजन्म की कर्मावस्था है जिसके कारण हमने पाप-पुण्य रूप कर्म किया है तथा अच्छा या बुरा फल भोग रहे हैं। कर्मो के कारण जो संस्कार बनते है उन्ही के कारण विज्ञान संभव हो सकता है।

अविद्या : अविद्या, अज्ञानता या मिथ्या ज्ञान के कारण जीव क्षाणिक, असार एवं अनित्य सांसारिक वस्तुओं को स्थायी सारस्वरूप और नित्य तथा आत्मस्वरूप समझ लेता है। परिणाम स्वरूप भोग पदार्थो की प्राप्ति हेतु उसके मन में काम, क्रोध,

लोभ-मोह आदि की उत्पत्ति होती है और मनुष्य नानाविध कार्यों मे प्रवृत्त हो जाता है।

NOTES

दुःख के उक्त बारह कारणों का सम्बन्ध वत्रमान, भूत और भविष्य तीनों जीवन से हैं। वत्रमान जीवन, पूर्व-जीवन का परिणाम है और वत्रमान जीवन की अन्तिम अवस्था से भविष्य जीवन की प्रथम अवस्था की उत्पत्ति होती है।

4.4.4 तृतीय आर्यसत्य (दुःख निरोध या निर्वाण)

द्वितीय आर्यसत्य में अपने देखा कि महात्मा बुद्ध ने मानव जीवन में प्राप्त होने वाले दुःखो हेतु कारणो की एक लम्बी श्रृँखला बतलायी है। यदि इन कारणों (द्वादश निदान) को नष्ट कर दिया जाय तो दुःख निवृत्ति संभव है। दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति जिससे वे फिर कभी न पैदा हो सके। निर्वाण या मोक्ष कहलाता है।

निर्वाण की प्राप्ति जीवन के रहते भी हो सकती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह ये हमारे आध्यात्मिक जीवन के शत्रु है यदि इन पर विजय प्राप्त करके व्यक्ति संसार मे अनासक्त भाव से होकर कर्म करे तो कर्म जन्य संस्कार पैदा नही होंगे परिणामस्वरूप संस्कार जन्य बन्धन नही होगा और जीव दुःखो से निवृत्ति प्राप्त कर सकता है। मोक्ष प्राप्त व्यक्ति को “अर्हत्” कहते है। निर्वाण रागद्वेष तथा तज्जन्य दुःखो के नाश की अवस्था है। यहाँ एक प्रश्न पैदा होता है कि क्या निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद जीवन (मनुष्य) कर्ममय जीवन से बिरत हो जाता है? और यदि नही तो कर्म करने पर फल (संस्कार) अवश्य पैदा होंगे और यही पुनः बन्धन का कारण बनेगा। निर्वाण अकर्मण्यता की स्थिति नही है। यदि ऐसा ही है तो फिर कर्म+फल+संस्कार के सम्बन्धों का क्या होगा? महात्मा बुद्ध का विचार है कि कर्म दो प्रकार के होते है-

1. **सकाय कर्म** : यह कर्म राग द्वेष और मोह के कारण होता है। इस प्रकार का कर्म विषयों में हमारी आसक्ति को बढ़ाता है और बन्धन का कारण होता है।

2. **निष्काम कर्म :** यह कर्म अनासक्त भाव से संसार को क्षणिक, हेय, और अनात्म समझकर किया जाता है। बिना राग-द्वेष और मोह के किया गया यह कर्म संस्कार नही पैदा करता। परिणामस्वरूप पुनर्जन्म की संभावना नही रहती है।

NOTES

कर्मों के उक्त भेद को एक उदाहरण के माध्यम से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। साधारण ढंग से बीज को बौने से उसमें से अंकुर फूट पड़ता है परन्तु यदि बीज को भूनकर बोया जाय तो अंकुरण नही होता है। ठीक इसी तरह से संसार मे विषयानुशक्ति से रहित होकर यदि जल मे रहने वाले कमल जैसी स्थिति में संसार में निवास किया जाय तो कभी भी बन्धन नहीं पैदा होता है। स्वयं महात्मा बुद्ध भी निर्वाण प्राप्ति के बाद कभी भी निष्क्रिय नही रहे।

यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि निर्वाण को अर्थ जीवन का नाश नही बल्कि दुःखों का अंत है। स्वयं महात्मा बुद्ध भी निर्वाण प्राप्ति के बाद काफी दिनों तक पूर्ण सक्रिय रहे। धर्म प्रचार, परिभ्रमण, संघ स्थापन आदि कार्य तो महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के बाद ही किये थे। निर्वाण से दो तरह के लाभ होते है-प्रथम तो यह है कि निर्वाण प्राप्ति के बाद पुनर्जन्म और तज्जनित दुःख संभव नही है क्योंकि जन्मग्रहण के लिये जो आवश्यक कारण हैं वे नष्ट हो जाते है दूसरा लाभ यह है कि जो निर्वाण प्राप्त कर लेता है उसका जीवन मृत्युपर्यन्त पूर्णज्ञान और शान्ति के साथ बीतता है। निर्वाण की अवस्था पूर्णतया शान्त, स्थिर तथा तृष्णा विहीन होती है।

अब कोई व्यक्ति यह प्रश्न पूछे कि निर्वाण प्राप्त कर लेने बाद व्यक्ति की क्या। स्थिति होती है मोक्ष का क्या स्वरूप होता है तो इसका उत्तर यही है कि निर्वाण वर्णनातीत है। जैसे उपनिषदों में परमतत्व के विवेचन के सन्दर्भ में कहा जाता है कि "य तो वाचा निवत्रन्ते अप्रात्य मनसा सह" अर्थात् जहाँ से मन और वाणी लौट आते हैं, वर्णन नही कर पाते है। ठीक उसी तरह से महात्मा बुद्ध निर्वाण को वर्णनातीत मानते है। यह दिव्य अनुभूति का विषय है सामान्य

विवेचन का नहीं। निर्वाण के स्वरूप तथा उसकी अनुभूति को शब्दों मे व्यक्त नही किया जा सकता है।

NOTES

4.4.5 चतुर्थ आर्य सत्य : दुःख निरोध-मार्ग

चतुर्थ आर्यसत्य में महात्मा बुद्ध ने निर्वाण प्राप्ति के मार्ग का विवेचन किया है। अष्टांगिक मार्ग वह साधन है जिस पर चलकर जीव निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। यह मार्ग निम्नवत् है।

सम्यक् दृष्टि : अविद्या य अज्ञानता के कारण ही संसार तथा सांसारिक वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप समझ मे नही आता है-परिणामस्वरूप हम अनित्य दुःखद और अनात्म वस्तुओं को नित्य, सुखद और आत्मस्वरूप समझ बैठते है। यही मिथ्या दृष्टि सभी बुराइयों एवं दुःखो मूल कारण है। इस दृष्टि का परित्याग कर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर सतत् ध्यान रखना चाहिये।

सम्यक संकल्प : दृढ़ निश्चय करना ही सम्यक् संकल्प है। सम्यक् संकल्प के दो अंश है-शुभ संकल्प का ग्रहण करना और अशुभ संकल्प का परित्याग। जो निर्वाण चाहते है उन्हें सांसारिक विषयों की आसक्ति, दूसरो के प्रति विद्वेश और हिंसा इन तीनों के परित्याग का संकल्प करना चाहिये।

सम्यक् वाक : अनुचित वचन का त्याग ही सम्यक् वाक् है। अनुचित वचन चार प्रकार के है-मिथ्यावचन, चुगली करना, कठोर वचन, व्यर्थ बकवास। इनका परित्याग कर मितभाषी (संक्षिप्त) मृदुभाषी (मीठे वचन) और मंगलभाषी (कल्याणकारी) होना चाहिये।

सम्यक् कर्मान्त : सम्यक् संकल्प केवल वाणी का ही आदर्श नही है। बल्कि सम्यक् संकल्प को हमें अपने व्यावहारिक जीवन में भी उतारना चाहिये। अहिंसा अस्तेय तथा इन्द्रिय संयम ही सम्यक् कर्मान्त है।

सम्यक् आजीव : जीविन निर्वाह के लिये उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध मार्ग का त्याग ही सम्यक् आजीव है। दूसरों को क्लेश देकर, दूसरों की हिंसा कर जीविकोपार्जन करना वर्जित है।

सम्यक् व्यायाम : जिन विषयों का हमें ज्ञान प्राप्त हो गया है अथवा जिन आदर्शों को हमने जीवन मे उतारने का संकल्प कर लिया है। उनका बारम्बार अभ्यास ही सम्यक् व्यायामा है। इस हेतु निम्न प्रक्रिया का निरन्तर पालन करना चाहिये।

1. पुराने बुरे भाव का पूरी तरह नाश हो जाय। 2. नये बुरे भाव भी मन में न आये। चूँकि मन कभी विचारों से खाली नही रह सकता अतः 3 मन को बराबर अच्छे-अच्छे विचारों से पूर्ण रखना आवश्यक है। 4. इन शुभ विचारों को मन मे धारण करने के लिये सतत् चेष्टा करते रहना आवश्यक है।

सम्यक् व्यायाम के उपदेश से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धर्म मार्ग में बहुत आगे बढ़े हुये व्यक्ति को भी निरन्तर सजग रहने की आवश्यकता है। जीवन की थोड़ी सी चूक व्यक्ति को पथ भ्रष्ट कर देगी परिणाम स्वरूप मोक्ष साधना भंग हो जायेगी।

सम्यक् स्मृति : यह संसार बड़ा लुभावना है। विषयभोगों की चाहत इतनी आसानी से समाप्त नही होती है। जिन विषयों का ज्ञान प्राप्त हो चुका है उन्हे बराबर स्मरण करते रहना आवश्यक है नही तो क्या पता जीवन के किस क्षण, किस अवस्था अथवा किस मोड़ पर विषयों में पुनः आसाक्ति हो जाय और सारी साधना पर पानी फिर जाय। इसलिये निर्वाण के पथिक को निरन्तर सावधान रहने की आवश्यकता है। इसलिये बुद्ध कहते है शरीर को शरीर, वेदना को वेदना, चित्त को चित्त और मानसिक अवस्था को मानसिक अवस्था के रूप में ही चिन्तन करते रहना आवश्यक है।

सम्यक् समाधि : उपर्युक्त सात सोपानों की सिद्धि के उपरान्त साधक सम्यक् समाधि में प्रवेश करने योग्य हो जाता है और समाधि की चार अवस्थाओं को पार करने के उपरान्त निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है। समाधि की चार अवस्थायें निम्नवत् हैं-

1. ध्यान की पहली अवस्था में साधक एकाग्रचित्त हो वाह्य विषयों से ध्यान को हटाकर केवल आर्यसत्यों पर ही चितंन करता है। आर्यसत्य सम्बन्धी अनेक तर्क-वितर्क उसके मन में उठते हैं और सन्देह का उदय होता है।

NOTES

NOTES

2. ध्यान की द्वितीय अवस्था मे साधक के सन्देह दूर हो जाते हैं तथा आर्य सत्यों के प्रति श्रद्धा का उदय होता है। साधक को ध्यान जन्य आनन्द का अनुभव होता है।
3. तीसरी अवस्था में साधक का ध्यान आनंद से भी हट जाता है तथा उसके मन में उपेक्षा भाव का उदय होता है परन्तु दैहिक सुख का मान रहता है।
4. घ्यान की चौथी अवस्था में चित्त की साम्य अवस्था, दैहिक सुख एवं समाधि के आनन्द किसी का भी अहसास नही होता। चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है यह अवस्था पूर्ण शान्ति, पूर्ण वैराग्य तथा पूर्ण निरोध की है। यह सुख और दुःख दोनों से रहित अवस्था है। इस प्रकार दुःखों का सर्वथा निरोध हो जाता है और अर्हत्व या निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है। यह पूर्ण प्रज्ञा की अवस्था है

4.4.6 बुद्ध के उपदेशों में निहित दार्शनिक विचार

क्षणिकत्व की भावना- अर्थ क्रियाकारित्व

महात्मा बुद्ध कारण-कार्य सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य है। बिना कारण के किसी भी कार्य या घटना का प्रादुर्भाव नही होता है। अतः कारण के नष्ट हो जाने पर कार्य स्वतः ही नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार संसार की समस्त वस्तुयें अनित्य एवं नाशवान है। महात्मा बुद्ध के इस अनित्यवाद सिद्धान्त को उनके शिष्यों ने क्षणिकवाद में बदल दिया। क्षणिकवाद का अर्थ है-किसी भी वस्तु का आस्तित्व सनातन नहीं। किसी वस्तु का अस्तित्व कुछ काल तक ही रहता है। जिस प्रकार एक प्रवाह दूसरे प्रवाह को जन्म देता है। दूसरा तीसरे को, तीसरा चौथे को उसी प्रकार एक क्षण दूसरे को तथा दूसरा तीसरे को जन्म देता है। यह प्रवाह नित्यता है। इस प्रवाह नित्यता या सन्तान को ही हम भ्रमवश सनातन या शाश्वत मान लेते हैं वास्तव में कोई भी वस्तु शाश्वत या नित्य है। सब कुछ आनित्य, दुःखात्मक और अनात्मस्वरूप है। नदी के प्रवाह की भाँति सभी वस्तुयें सतत् परिवत्रन की अवस्था मे है।

NOTES

"अर्थ क्रियाकारित्व लक्षणं सत्" अर्थात सत्ता वह है जो कुछ कार्य उत्पन्न करने की क्षमता रखे। शश-विषाण के सदृश असत् वस्तु कभी कोई कार्य उत्पन्न नही कर सकती। यदि सत्ता का यही लक्षण है तो इससे सिद्व किया जा सकता है कि सत्ता क्षणिक है। एक बीज का उदाहरण लिया जाय। यदि बीज की सत्ता स्थायी है तो फिर उससे प्रत्येक क्षण एक ही प्रकार का कार्य होना चाहिये। लेकिन हम जानते हैं कि बीज जब बोरे मे बंद रहता है तो उससे कार्य (अंकुरण) नही होता। और वही बीज जब जमीन मे बो दिया जाता है तो उससे कार्य (अंकुरण) हो जााता है। यहाँ पर प्रतिपक्षी यह कह सकता है कि यह बात सही है कि प्रत्येक क्षण बीज से एक ही प्रकार का कार्य नही होता परन्तु उसमें कार्योत्पादन की क्षमता हमेशा रहती है और जैसे ही वह मिट्टी, खाद, पानी, प्रकाश आदि के सम्पर्क में आता है तो उससे कार्य हो जाता है। अतः बीज सदैव एक है अर्थात स्थायी हैं। स्पष्ट है कि यह मुक्ति बहुत कमजोर है। इससे तो यही प्रमाणित होता है कि बीज के पूर्व रूप से अर्थात् जब उसमें मिट्टी, खाद, पानी, प्रकाश आदि से सम्पर्क नही था तो उससे कार्य नही हुआ जैसे ही उसकी स्थितियों मे परिवत्रन आया अर्थात् खाद, मिट्टी, पानी, प्रकाश से सम्पर्क हुआ, अंकुरण फूट पड़ा। अतः बीज दोनों अवस्थाओं में एक नहीं रहता वरं वह परिवात्रित हो जाता है। उक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि संसार की सभी-वस्तुये प्रतिक्षण बदलती रहती है

अनात्मवाद :

दार्शनिक जगत में अधिकांश दार्शनिक यह मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर आत्मा नाम की अजर, अमर, अविनाशी सत्ता है। शरीर के नष्ट हो जाने के उपरान्त यही अविनाशी आत्मा पुनर्जन्म के रूप मे दूसरी शरीर के रूप मे प्रवेश कर जाती है। महात्मा बुद्ध पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुये भी अमर अविनाशी सत्ता के रूप में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही करते हैं। अब यहाँ एक प्रश्न यह पैदा होता है कि मृत्यु के साथ शरीर नष्ट हो जाती है। स्थायी आत्मा नाम की कोई सत्ता है नही तो फिर किसका पुनर्जन्म नाम और किस प्रकार? उत्तर बौद्ध दर्शन से-स्थिर आत्मा के अस्तित्व को

NOTES

अस्वीकार करते हुये भी बुद्ध यह स्वीकार करते थे कि जीवन विभिन्न क्रमबद्ध और अव्यवास्थित अवस्थाओं का प्रवाह या संतान मात्र है। विभिन्न अवस्थाओं के निरन्तर प्रवाह को ही जीवन कहते हैं जिसमें एक अवस्था (वत्रमान) अपनी परवर्ती अवस्था का कारण होती है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं मे पूर्वापर कारण कार्य का सम्बन्ध रहता है। इसलिये सम्पूर्ण जीवन एक मय मालूम पड़ता है। प्रत्येक क्षण की ज्योति दीपक की तत्कालीन अवस्थाओं पर निर्भर होती है। क्षण-क्षण में दीपक की अवस्थायें बदलती रहती है। अतः प्रतिक्षण ज्योति भी भिन्न-भिन्न होती हैं। लेकिन ज्योतियों के भिन्न-भिन्न होने पर भी वे बिल्कुल अविच्छिन्न मालुम पड़ती है। ठीक यही स्थिति जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के साथ हैं। जहाँ तक पुनर्जन्म की बात है। वत्रमान जीवन की अन्तिम अवस्था से भविष्य जीवन की प्रांरभिक अवस्था की उत्पप्ति होती है। किन्तु दोनो दो पृथक् जीवन हैं।

महात्मा बुद्ध का विचार है कि मनुष्य केवल एक समाष्टि का नाम है। जिस प्रकार चक्र, धुरी, नेमि आदि के समूह को रथ कहते हैं उसी प्रकार वाह्य रूपयुक्त शरीर, मानसिक अवस्थायें और रूपहीन संज्ञा (या विज्ञान) के समूह या संघात को मनुष्य कहते हैं। इस संघात के अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई अतिरिक्त सत्ता नही है। जब तक इनकी समष्टि कायम है तब तक मनुष्य का आस्तित्व है और जिस दिन या जिस क्षण यह समष्टि नष्ट हो जायेगी उसी क्षण मनुष्य का अंत हो जायेगा। इस प्रकार हम संक्षेप मे कह सकते हैं कि जीवन विभिन्न परिवर्वनशील अवस्थाओं का एक अनवरत प्रवाह मात्र है पूर्ववर्ती तथा परवर्ती अवस्था मे कारण कार्य का सम्बन्ध होता है। स्थायी आत्मा नाम की सत्ता मे विश्वास करना उसी प्रकार से मूर्खता है जैसे कोई व्यक्ति ऐसी सुन्दरी रमणी से प्रेम करे, जिसको न देखा हो, न सुना हो और न उसकी कल्पना ही किया हो।

4.4.7 बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय

पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हुये हम यहाँ बताना चाहेगे कि महात्मा बुद्ध अतीन्द्रिय, तत्वमीमांसीय प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देते थे। उनका मानना था कि

मानव मात्र के लिये सर्वप्रथम आवश्यक है दुःख के मूल कारणों की खोज के साथ दुःख निवृत्ति का उपाय ढूँढना। परन्तु बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनके अनुयायियों ने उनके मौन के विविध अर्थ निकाले और अस्तित्व तथा ज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन कालान्तर में चार दार्शनिक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया आस्तित्व सम्बन्धी प्रश्न यह है कि वाह्य या मानसिक किसी वस्तु का आस्तित्व है या नही? यदि आस्तित्व है तो उसका ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? इस प्रश्न के तीन उत्तर दिये गये

NOTES

1. **माध्यमिक या शून्यवादी** : वाह्य या मानसिक किसी वस्तु का कोई अस्तित्व नही है। सब कुछ शून्य है।

2. **योगाचारी या विज्ञानवादी** : वाह्य वस्तुओं का कोई आस्तित्व नहीं है। मानसिक अवस्थायें या विज्ञान ही एकमात्र है।

3. कुछ बौद्ध यह मानते है कि मानसिक तथा वाह्य सभी वस्तुयें सत्य हैं अतः ये सर्वास्तिवादी कहलाये हैं।

ज्ञान सम्बन्धी प्रश्न इस प्रकार है वाह्य वस्तुओं का ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? इनके ज्ञान के लिये क्या प्रमाण है?

जो लोग यह मानते है कि वाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष से न प्राप्त होकर केवल अनुमान द्वारा ही प्राप्त होता है वे वाह्यानुयेयवादी या सौतात्तिक कहलाये।

जो लोग यह मानते हैं कि वाह्य वस्तुओं का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त होता है वे वैभाषिक या वाह्य प्रत्यक्षवादी कहलाये।

माध्यमिक या शून्यवाद :

इन मत के प्रवत्रक आचार्य नागार्जुन थे। प्रायः इस मत को माध्यमिक या मध्यम मार्ग कहा जाता है क्योकि इसके अनुसार वस्तु का स्वरूप न तो पूर्णतः भावरूप है और न अभाव रूप ही। इनका मत शून्यवाद भी कहलाता है क्योंकि शून्य ही परमतत्व है तत्व का यथार्थ स्वरूप बुद्धि के समस्त विकल्यों के परे है। 'शून्य एव धर्माः' शून्य ही परम तत्व है। अतः यह मत शून्यवाद कहलाया।

NOTES

प्रत्यक्ष जगत के परे पारमार्थिक सत्ता अवश्य है लेकिन वह अवर्णनीय है। उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह मानसिक है या वाह्य/साधारण लौकिक विचारों के द्वारा अवर्णनीय होने के कारण उसे 'शून्य' कहा जाता है। सत्य का लक्षण निरूपण करते हुये शून्यवाद में कहा गया है सत्य वह है जो निरपेक्ष है, जो अपने आस्तित्व के लिये अन्य वस्तु पर निर्भर नहीं है। किन्तु साधारणतः जितनी वस्तुओं को हम जानते हैं वे किसी न किसी वस्तु पर अवश्य निर्भर है स्पष्ट है ऐसी स्थिति मे उन्हें सत्य नहीं कहा जा सकता। उन्हे असत्य भी नही कहा जा सकता क्योंकि उनका प्रत्यक्ष होता है यदि वे भभश्रृंग या आकाश कुसुम की तरह बिल्कुल असत्य होती तो उनका प्रत्यक्ष न होता। ऐसी स्थिति में क्या हम कह सकते हैं कि ये सत्य और असत्य दोनों हैं या ये कह सकते हैं कि ये न तो सत्य है और न असत्य। ऐसा कहना तो बिल्कुल विरुद्ध होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि पारमार्थिक सत्ता या परमतत्व बिल्कुल अवर्णनीय है इस वर्णनातीत तत्व को शून्यता कहते है। इसी बात को तार्किक रूप से इस प्रकार रखा जा सकता है साधारणतः हमें वस्तुओं की प्रतीति तो होती है परन्तु जब हम उनके तत्विक स्वरूप को जानने के लिये उद्यत होते है तो हम एक विरोधाभास की स्थिति मे खडें हो जाते हैं। हम यह निश्चय नही कर पाते हैं कि वस्तुओं को यथार्थ स्वरूप 1. सत्य है 2. असत्य है या 3. सत्य और असत्य दोनो है। 4. न तो सत्य है और न असत्य।

वस्तुओं का स्वरूप इन चार कोरियों से रहित होने के कारण 'शून्य' है। माध्यमिक कारिका मे कहा गया है।

न सन्नासन्न सदसन्न चात्यनुभयात्यकम्
चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं तत्वं माध्यमिका विदुः।।

संसार असत् या शून्य हैं-द्रष्टा, दृश्य, दर्शन सभी स्वटन के समान भ्रम है।

बुद्धया विविच्यामानानां स्वभावो नावधार्यते
अतो निरमिलत्यास्ते निःस्वभावाश्च दार्शितः।।

इस प्रकार वस्तुओं के परावलम्बन को, उनकी निरंतर परिवर्तनशीलता को, उनकी अवर्णनीयता को शून्य कहा जााता है। तत्व सम्बन्धी अपने विचारों को और

अधिक स्पष्ट करने हुये नागार्जुन कहते है सत्य दो प्रकार का होता है-1.संवृत्ति सत्य 2. पारमार्थिक सत्य

NOTES

संवृत्ति सत्य : व्यावहारिक जीवन का सत्य है। यह पूर्ण सत्य न होते हुये भी व्यावहारिक जीवन इसी पर अवलम्बित है। उसी तरह से जैसे किसी व्यक्ति का फोटो तात्विक रूप से कागज है परन्तु व्यावहारिक रूप में व्यक्ति विशेष की पहचान का कारण बनता है। ठीक इसी रूप मे जागतिक वस्तुओं की सत्ता देखी और समझी जानी चाहिये। व्यावहारिक जगत से परे पारमार्थिक सत्ता अवश्य है परन्तु साधारण लौकिक साधनों-मन और वाणी से उसका वर्णन नही किया जा सकता। अतः उसे वेदान्त की भाषा मे 'अनिर्वचनीय' कहा जा सकता है और माध्यमिक की भाषा मे शून्य।

4.4.8 योगाचार या विज्ञानवाद

विज्ञानवादी, शून्यवादियों के इस मत से सहमत है कि वाह्य वस्तुओं का अस्तित्व नहीं है। परन्तु वे इस मत को स्वीकार नहीं करते कि चित्त या मन का भी अस्तित्व नही है। विज्ञानवादियों के अनुसार विज्ञान, मन, और चित्त सभी समानार्थक है अथवा पर्यायवाची है। लंकावतार सूत्र के अनुसार-चेतन क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण विज्ञान, चित्त कहलाता है, मनन क्रिया से सम्बद्ध होने से मन, और विषयों का ग्राहक होने से विज्ञान है। अतः मन, चित्त, विज्ञप्ति और विज्ञान के रूप में केवल विज्ञान की ही सत्ता है।

चित्तमालय विज्ञानं मनो यन्मन्त्रमात्कम
ग्रहणाति विषयान् येन विज्ञानं हि तदुच्यते।

'लंकावतार सूत्र' विज्ञानवाद के अनुसार चित्त की ही एक मात्र सत्ता है। विज्ञान प्रवाह को ही चित्त कहा जाता है। जिस तरह जब हम स्वप्न देखते रहते हैं उस समय समस्त वाह्य जगत और उससे सम्बंधित वस्तुयें, बाहर प्रतीत होती है और तदनुसार हम व्यवहार भी करते है जब कि स्वप्नावस्था की समस्त वस्तुयें हमारे मन के अन्दर घटित होती हैं, वाह्य जगत से उसका कुछ नही लेना-देना होता है ठीक उसी तरह से सामान्य जाग्रतावस्था में भी हमारे शरीर तथा अन्य

NOTES

जागतिक वस्तुयें जो मन के बाहर मालुम पड़ती हैं वे सभी हमारे मन के अन्तर्गत हैं। चूँकि किसी वस्तु तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान में कोई अन्तर नही किया जा सकता इसलिये वाह्य वस्तु का आस्तित्व बिल्कुल असिद्ध है। धर्मकीर्ति कहते हैं कि नीले रंग तथा नीले रंग के ज्ञान मे कोई भेद नही किया जा सकता क्योकि दोनो का पृथक् आस्तित्व नही है यथार्थतः दोनो एक हैं। दृष्टि दोष के कारण कोई व्यक्ति चन्द्रमा को दो देख सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि चन्द्रमा दो हैं। किसी वस्तु का ज्ञान, ज्ञान के बिना नही हो सकता। अतः यह किसी तरह से प्रमाणित नही किया जा सकता कि ज्ञान से भिन्न वस्तु का कोई आस्तित्व भी है।

वाह्य वस्तुओं का खण्डन करने के लिये विज्ञानवादी ठोस तर्क भी देते हैं। इनके अनुसार यदि कोई वाह्य वस्तु है तो वह या तो अणु मात्र है या अणुओं के योग से बनी हुई (अणुओं को संघात)। अब यदि वह अणुमात्र है तो उसका प्रत्यक्ष नही किया जा सकता क्योंकि अणु इतना सूक्ष्म होता है वह प्रत्यक्षगम्य नही हो सकता फिर यही समस्या अणुओं के संघात से बनी वस्तुओं के प्रत्यक्ष में भी आती है। जब हम एक अणु का प्रत्यक्ष नही कर सकते तो उस स्थिति में अणुओं के संघात से बनी वस्तु का प्रत्यक्ष तो संभव ही नही हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वाह्य वस्तुओं का ज्ञान नही प्राप्त किया जा सकता। अतः मन के बाहर यदि किसी वस्तु का आस्तित्व माना भी जाय तो भी उसका ज्ञान असंभव है। अतः हम कह सकते हैं कि वाह्य वस्तुओं का कोई अस्तित्व नहीं है आंतरिक विज्ञान ही वाह्य वस्तुओं का कोई अस्तित्व नहीं है आतंरिक विज्ञान ही वाह्य वस्तुओं के रूप में प्रतीत होते हैं। विज्ञानवादी मन को आलय विज्ञान कहते हैं क्योकि वह विभिन्न विज्ञानों का आलप या भण्डार हैं। सभी ज्ञान इसमें बीजरूप में निहित रहते हैं। परन्तु अन्य दर्शनों की आत्मा की भाँति यह नित्य और अपरिवत्रनशीन नहीं हैं। यह तो परिर्वनशील चित्तवृत्तियों का एक प्रवाह है। जिस तरह तालाब मे चंचल लहरें उठती रहती हैं। उसी तरह से मन में विषय-वासनायायें रूपी लहरें उठती रहती हैं। जब तक इस आलय विज्ञान को वश में न कर लिया जाय तब तक निर्वाण की प्राप्ति नही हो सकती। अभ्यास तथा

आत्मसंयम के द्वारा आलय विज्ञान को वश में किया जा सकता है परिणाम स्वरूप उससे विषय-विज्ञान की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इससे निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। योगाचार दर्शन के प्रवत्रक असंग, बसुबंधु तथा दिङ्नागये।

NOTES

4.4.6 सौतान्त्रिक या वाह्यानुमेयवाद

सौतान्त्रिक आन्तर जंगत-चित्त और वाह्य जगत दोनों की सत्ता स्वीकार करते हैं। विज्ञानवादियों का कहना है कि वाह्य वस्तुओं की कोई सत्ता नहीं है आन्तरिक विज्ञान ही भ्रम वश या प्रतीति वश वाह्य वस्तु के रूप मे प्रतीत होते हैं। सौतान्त्रिक इस बात का जोरदार खण्डन करते हैं। उनका कहना है कि यदि वाह्य वस्तुओं के अस्तित्व को न माना जाय तो वाह्य वस्तुओं की प्रतीति कैसे होती है हम इसका समुचित उत्तर नही दे सकते। जिसने वाह्य वस्तु को कभी प्रत्यक्ष नही देखा है वह यह नही कह सकता कि भ्रमवश अपनी मानसिक अवस्था ही वाह्य वस्तु के सदृश प्रतीत होती है। उसके लिये वाह्य वस्तु के सदृश कहना उसी तरह अर्थहीन है जैसे बन्ध्या पुत्र।

विज्ञानवादियें का यह कहना कि वस्तु और उसके ज्ञान में कोई भेद नही है इसलिये वाह्य वस्तु की सत्ता नही। सौतान्त्रिक इस बात को भी सिरे से नकार देते है। उनका कहना है जब हमें घड़े का प्रत्यक्ष होता है ता इस बात की हमें स्पष्ट अनुभूति होती है कि घड़ा मुझसे स्वतन्त्र वाह्य जगत में विद्यमान है जबकि घड़े से सम्बन्धित ज्ञान हमारे आन्तर जागत का विषय है। इसके साथ की यदि वाह्य वस्तुओं का स्वतन्त्र आस्तित्व न होता तो दो ज्ञानों (घट ज्ञान और पढ ज्ञान) के बीच अन्तर कैसे स्थापित किया जाता। यदि घड़ा और कपड़ा (पृथक-पृथक वस्तु नही) केवल ज्ञान है तो उस स्थिति मे उनमें अन्तर नही किया जा सकता। जबकि हमारा व्यावहारिक अनुभव बतलाता है कि घड़ा और कपड़ा दोनो दो पृथक् पृथक् वस्तुयें है।

एक बात और है यदि ज्ञान केवल हमारे मन पर निर्भर होता तो हम जहाँ चाहते, जब चाहते इच्छित वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेते। परन्तु ऐसा नहीं होता है इससे भी यह प्रमाणित होता है कि वाह्य वस्तुओं का मन से स्वतन्त्र आस्तित्व है।

NOTES

सौतान्त्रिकों के अनुसार वाह्य वस्तुओं की ज्ञान से स्वतंत्र सत्ता है। वाह्य वस्तुओं के अनेक आकार होने के कारण ही ज्ञान के भिन्न-भिन्न आकार होते हैं। विभिन्न आकार के ज्ञानों से हम उनके कारण स्वरूप विभिन्न वाह्य वस्तुओं का अनुमान कर लेते है।

सौतान्त्रिको के अनुसार ज्ञान के चार कारण है-

1. आलम्बन 2. समनन्तर 3. अधिपति 4. सहकारी कारण

"ये चत्वारः प्रत्ययाः प्रसिद्धाः आलम्बन-समनन्तर-सहकार्यधिपति रूपाः।" सर्वदर्शन संग्रह

1. घट् पर आदि वाह्य विषय ज्ञान के आलम्बन कारण है क्योकि ज्ञान का आकार उसी से उत्पन्न होता है।
2. वस्तु ज्ञान की पूर्ववर्ती चेतना समनन्तर है। समनन्तर के कारण ही पूर्वक्षण के ज्ञान से आकार ग्रहण की शक्ति आती है।
3. विषय और पूर्ववर्ती ज्ञान के रहने पर भी बिना इन्द्रियों के वाह्य ज्ञान नही हो सकता। किसी विषय का ज्ञान रूप ज्ञान होगा या स्पर्श ज्ञान होगा या अन्य किसी प्रकार का होगा यह बात तो हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर रहती है अतः ज्ञानेन्द्रियो ज्ञान की अधिपति या नियामक कारण कही जाती है।
4. वस्तु इन्द्रिय पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था आदि के होने पर भी यदि आवश्यक प्रकाश, आवश्यक दूरत्व, आकार आदि सहायक कारण न हो तो भी ज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती। अतः ये सभी ज्ञान के सहकारी प्रत्यय कहलाते है।

उक्त चार कारणों के बल पर ही हमें वाह्य विषयों को अनुमानजन्य ज्ञान होता है।

4.4.10 वैभाषिक या वाह्यप्रत्यक्षवाद

इस मत की उत्पत्ति मुख्यतः कश्मीर में हुई थी। यह मत मुख्यतः अभिधर्मग्रन्थ पर निर्भर है। अभिधर्मग्रन्थ पर महाविभाषा या विभाषा नाम की एक

प्रकांड टीका इस मत का मूल अवलम्बन थी इसलिये इस मत का नाम वैमाषिक पड़ा। इस सम्बन्ध में सर्वदर्शन संग्रह में निम्नानुसार विवरण प्राप्त होता है-"वैभाषिको का पुराना नाम सर्वास्तिवादी है, क्योकि ये सबों की सत्ता स्वीकार करते है" बाद में जब कनिष्क के समय बौद्धों की चतुर्थ संगीति हुई तो उसमें इस सम्प्रदाय के मूलग्रन्थ आर्य कात्यायनी पुत्र के द्वारा रचित 'ज्ञानप्रस्थानशास्त्र' पर एक विराट टीका बनी जो 'विमाषा' कहलायी। इसी ग्रन्थ को सबसे अधिक मान्य करने के कारण इस सम्प्रदाय का नाम 'वैभाषिक' पड़ा। यशोमित्र ने स्फुटार्थ में लिया है-

विभाषया दिव्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकः।
विभाषां वा वदन्ति वैभाषिकाः।।

वैभाषिक चित्त तथा वाह्य वस्तु दोनों की सत्ता स्वीकार करते हैं। जहाँ तक वाह्य पदार्थो के ज्ञान का प्रश्न है वैभाषिकों का मानना है कि वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष को छोड़कर अन्य किसी माध्यम से नही हो सकता है। इसीलिये इनके मत को वाह्य प्रत्यक्षवाद भी कहा जाता है। यह सही है कि धूआँ देखकर हम आग का अनुमान करते हैं परन्तु ऐसा इसलिये हो पाता है कि अतीत मे हमने धूयें और आग को हमेशा साथ-साथ देखा है अर्थात् व्याक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है। परन्तु जिस व्यक्ति ने धूयें और आग को साथ-साथ कभी नही देखा है धूआँ देखकर आग का अनुमान कभी नही कर सकता। यदि वाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष कभी भी न हुआ रहे तो केवल मानसिक परिरूपों के आधार पर उनका अस्तित्व सिद्ध नही हो सकता। जिसने कभी कोई वाह्य वस्तु नही देखी है वह यह नहीं समझ सकता कि कोई मानसिक अवस्था किसी वाह्य वस्तु का प्रतिरूप है।

4.4.11 बौद्ध मत संग्रह

इस स्थल पर विवेच्य शीर्षक का वर्णन 'सर्वदर्शन संग्रह' के आधार पर किया जा रहा है-

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्
आर्य सत्याख्यया तत्व चतुष्टमिदं क्रमात्।।

NOTES

NOTES

विवेक विलास में बौद्ध मत का इस प्रकार वर्णन किया गया है-बौद्धों के देवता सुगत (बौद्ध-बुद्ध) हैं संसार क्षण में नष्ट हो जाता है। आर्यसत्य नाम के चार तत्वों को क्रमशः (जानना चाहिये) दुःख, दुःख का स्थान तब समुदाय तथा मार्ग ये सुप्रिसद्ध आर्यसत्य नही है क्योकि वे हैं- दुःख, समुदाय, निरोध और मार्ग।

दुःख का अर्थ संसार में रहने वाले प्राणी के स्कन्ध, जो पाँच कहे गये है- विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप।

द्वादश आयतन ये हैं-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (ज्ञान की) शब्दादि पाँच विषय (दूसरे मत मे पाँच कर्म की इन्द्रियाँ) मन तथा धर्म का आयतन (निवास स्थान अर्थात-बुद्धि) जिससे रागादि का समूह मनुष्यों के हृदय मे उत्पन्न होता है। आत्मा के अपने स्वभाव के नाम से जों विद्यमान है वही समुदाय है।

"क्षाणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा
स मार्ग इवि विज्ञेयः सच मोक्षेऽमिधीयते।।"

सभी संस्कार क्षणिक हैं यह जो स्थिर वासना (विचार) है इसे ही मार्ग जाने, इसे मोक्ष भी कहते है। प्रत्यक्ष और अनुमान-ये केवल दो प्रमाण हैं। वैभाषिक आदि बौद्धों के चार प्रस्थान प्रसिद्ध है।

वैभाषिक लोग अर्थ को ज्ञान से युक्त (प्रत्यक्षगम्य) मानते हैं। सौतान्त्रिक वाह्य अर्थ को प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहणीय नही लेते (अनुमेय मानते हैं) योगाचार के मत से बुद्धि ही आकार के साथ है माध्यमिक केवल ज्ञान को ही अपने मे स्थित मानते हैं। रागादि ज्ञान की परम्परारूपी वासना के नष्ट हो जाने से उत्पन्न मुक्ति चारों प्रकार के बौद्धो के लिये कही गयी है। चर्म, कमण्डलु, मुण्डन, चीर (वस्त्र) पूर्वाहन में (एक बार) भोजन संघ मे रहना और लाल (कषाय) वस्त्र धारण करना- बौद्ध मिक्षु इन्हें ही स्वीकार करते है।

शब्दावली

आर्यसत्य : महात्मा बुद्ध द्वारा दिये गये उपदेश आर्यसत्य कहलाते है। ये संख्या में चार हैं। इसलिये इन्हें चार आर्यसत्य भी कहा जाता है।

भव चक्र : कारणों की वह श्रृंखला जिसके कारण जीव इस संसार में आकार बार-बार जन्म ग्रहण करता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

द्वादश निदान : दुःख के बारह कारण हैं। जो क्रमशः एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। इन्हें द्वादश निदान कहा जाता है।

अविद्या : या अज्ञानता ही दुःख का मूलकारण है। इसी के कारण जीव असार दुःखद तथा अनित्य सांसारिक विषयों को सार रूप, सुखद तथा नित्य मान लेता है। अविद्या का कोई कारण नही हैं। अविद्या का विनाश विद्या के द्वारा ही हो सकता है।

अनात्मवाद : वह सिद्धान्त जिसके अनुसार आत्मा की सत्ता नही है।

क्षणिकवाद : इस सिद्धान्त के अनुसार संसार में कुछ भी स्थायी नही है। सब कुछ क्षणिक और नाशवान तथा परिवर्तनशील है।

NOTES

सूची प्रश्न

1. मूल बौद्ध दर्शन मे 'विवाद पराङ्मुखता' का क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजियें।
2. प्रथम आर्यसत्य "दुःख है" की विवेचन कीजिए।
3. 'द्वादश निदान' की व्याख्या कीजिये।
4. महात्मा बुद्ध के अनुसार निर्वाण के स्वरूप पर प्रकाश डालिये।
5. निर्वाण प्राप्ति के साधन के रूप मे अष्टांगिक मार्ग की आलोचनात्मक व्याख्या कीजियें।
6. क्षधिकवाद सिद्वान्त की समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
7. बौद्ध 'अनात्मवाद' सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।
8. माध्यमिको द्वारा प्रतिवादित 'शून्य' की व्याख्या कीजियें। क्या संसार शून्य है? विवेचना कीजिये।
9. विज्ञानवाद तथा सौतान्त्रिक मत की व्याख्य कीजिये।
10. वैभाषिक सिद्धान्त पर एक निबंध लिखिये।

प्रदत्त कार्य

1. महात्मा बुद्ध के 'जीवनपरिचय" का निरूपण कीजिये।
2. 'सामान्य' के सम्बन्ध में बौद्ध मत की विवेचन कीजिये।
3. "क्या महात्मा बुद्ध जीवन्मुक्ति को मानते थे? स्वमत के समर्थन में तर्क दीजिये।

NOTES

4. स्थायी आत्मा के आस्तित्व को अस्वीकार करते हुये भी महात्मा बुद्ध पुनर्जन्म की व्याख्या कैसे करते है? बताइये।

उपयोगी ग्रन्थ

1. डॉ. उमाशंकर शर्मा ''ऋषि'- सर्वदर्शनसंग्रहः
2. डॉ. बी.एन. सिंह : भारतीय दर्शन
3. दत्ता एण्ड चटर्जी : भारतीय दर्शन